शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

उत्तर शती का हिंदी साहित्य और बदलता भारतीय परिवेश
(ग्राम जीवन तथा हिंदी उपन्यास साहित्य के विशेष संदर्भ में)

डॉ. सुनील बाबुराव कुलकर्णी
विभागाध्यक्ष हिंदी, उ.म.वि. जळगाँव
इंद्रराज यादव
अनुसंधाता छात्र, उ.म.वि
जळगाँव, महाराष्ट्र, भारत

शोध संक्षेप

कोई भी लेखक अपने परिवेश और संस्कार की उपज होता है। उसी से उसका व्यक्तित्व बनता है और उसकी प्रतिच्छाया रचना में प्रतिबिम्बित होती है। उत्तर शती के हिंदी साहित्य में युगीन ग्रामीण, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिवेश का सुन्दर चित्रण परिलक्षित होता है। साहित्यकारों ने सामाजिक संदर्भ के यथार्थ परिवेश में गाँव एवं अंचल के मनुष्य की आंतरिक अनुभूति को प्रतिस्थित किया है। उत्तर शती के साहित्य में तनाव, असंतोष, मन की छटपटाहट आदि ने सृजन की अभिव्यक्ति को मानसिक ऊर्जा प्रदान की है। इस सदी के साहित्य में मध्यमवर्गीय जीवन की समस्याओं का यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण हुआ है। उत्तर शती के इस दशकीय साहित्य में हिंदी के प्रमुख ग्रामीण एवं आंचलिक उपन्यासकारों में विद्यासागर नौटियाल (भीम अकेल), मिथिलेश्वर (युध्दस्थल), डॉ. विवेकीराय (नमामि ग्रमम्), मैत्रेयी पुष्पा (चाक, झूला नट, इदन्नमम्), रामदरश मिश्र (बीस बरस, पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ), श्रीलाल शुक्ल (विश्रामपुर का संत), ज्योतिष जोशी, (सोन बरसा) शिवप्रसाद सिंह (औरत), रामविलास शर्मा (चार दिन), ममता कालिया (नरक दर नरक, बेघर, प्रेरम कहानी), मन्नुभंडारी, (आपका बंटी, महाभोज) अलका सरावगी (कली काथ, वाया बायपास), मेहरून्निसा परवेज (आँखों की दहलीज, कारज, अकेला पलाश), राजेन्द्र यादव (एक इंच मुस्कान), कमलेश्वर (कितने पाकिस्तान) तथा वीरेंद्र जैन (डूब, पार) आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। उत्तर शती के प्राय सभी उपन्यासकारों ने अपने साहित्य में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, साहित्यिक आदि किसी न किसी परिवेश के रुप की प्रतिच्छाया अवश्य अंकित की है। बदलते भारतीय परिवेश का प्रभाव उत्तर शती के हिंदी उपन्यास साहित्य पर किस प्रकार हुआ यह देखना तथा उसे स्पष्ट करना यह प्रस्तुत आलेख का मुख्य उद्देश्य है। इस कारण आरंभ में बदलते ग्रामीण, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक आदि परिवेश को संक्षेप में स्पष्ट कर इस कालावधि में घटी घटनाओं के प्रतिबिंब इस काल के हिंदी उपन्यास साहित्य में कैसे प्रतिबिंबित हुए यह देखना शोधार्थी का मुख्य लक्ष्य है।

बदलता ग्रामीण. सामाजिक परिवेश

चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज मे रहना उसकी प्रकृति है। इसी प्रकृति के कारण वह दूसरों से मिल.जुलकर सामाजिक संबंधों का निर्माण करता है। सामाजिक संबंधों के अभाव में मनुष्य और समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समाज में व्यक्ति एक दूसरे से सहयोग करते हुए ही अपने लक्ष्य की पूर्ति करता है। समाज के साथ व्यक्ति किसी न किसी प्रकार अपनापन महसूस करता है। व्यक्ति की छोटी-छोटी .क्रिया किसी न किसी रूप में समाज को

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

प्रभावित करती है। बदलते परिवेश, परिस्थितियों एवं विचारों के अनुरुप व्यक्ति अपने आपको बदलता रहता है।

प्रायः ऐसा माना जाता है कि भारत में सामाजिक परिवर्तन वास्तव में एक बहुत जटिल प्रघटना है। स्काटलेंट एप्सटीन द्वारा किए गए कर्नाटक के दो गावों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि आर्थिक विकास द्वारा आवश्यक रुप से सामाजिक परिवर्तन नहीं होता और सामाजिक परिवर्तन द्वारा आवश्यक तौर पर आर्थिक विकास नहीं होता। सिंचित गाँव में आर्थिक विकास अधिक और सामाजिक परिवर्तन कम हुआ। असिंचित गाँव में सामाजिक परिवर्तन अधिक और आर्थिक विकास कम हुआ। सिंचित गाँव में प्रवसन, शिक्षा, राजनीति और विविधता नहीं हुई जबकि असिंचित गाँव में विविधता, विभेदीकरण, प्रवसन, शिक्षा और राजनीतिकरण बहुत हुआ क्योंकि लोगों को रोजगार के मार्ग ढूँढ़ने के लिए गाँव से बाहर बडी मात्रा में जाना पडा। सिंचित गावों में लोगों को आर्थिक सुरक्षा प्राप्त थी, इसलिए अधिक सामाजिक परिवर्तन नहीं हुआ। उत्तर शती में ग्रामीण व्यक्ति के जीवन में जितना तेजी से परिवर्तन हुआ, उतना पहले कभी नहीं हुआ। एक और सदियों से स्थापित समाज व्यवस्था में परिवर्तन हुआ।

उत्तर शती में जन्मा मनुष्य संबंधों एवं परंपरओं से विच्छिन्न होकर आत्मकेंन्द्रित होता गया। पिता, पुत्र, माँ, बेटी, पति-पत्नी, भाई. बहन जैसे संबंधों में भी अजनबीपन की भावना उत्पन्न हुई। आज वे एक दूसरे के निकट रहकर भी एक दूसरे से बहुत दूर ह¨ते हैं। डॉ. विवेकीराय के उपन्यास नमामि ग्राम मे यही समस्या चित्रित हुई हैं।

ग्रामीणों के जीवन में आया बदलाव

वर्तमान युग में ग्रामीण परिवार की शोषित है फिर भी धीरे-धीरे वह शिक्षा एवं अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हो रहे हैं। ग्रामीण लडकियाँ उच्च शिक्षा हेतु गाँव से बाहर भी पढने लगी हैं। गाँव में भी विद्यालय तथा डिग्री कॉलेज खुलने लगे हैं। जहाँ शिक्षित नारियाँ सार्वजनिक कार्यक्रमों¨ में भाग लेती है, वहीं ग्रामीण स्त्री आज भी कृषि कार्य में सहयोग देती है। ग्रामीण स्त्री राजनीति के प्रति आज भी उदासीन ही दिखाई देती है। अधिकांश स्त्रियाँ आज भी धर्म के प्रति आस्थावान हैं, वे अंधविश्वासों एवं रूढियों पर विश्वास रखती हैं। विधवाओं की दशा आज भी दयनीय है जिसका चित्रण मिथिलेश्वर के युद्धस्थल उपन्यास में मिलता है।

स्त्री का नौकरी करना, दाम्पत्य जीवन का विघटन, प्रेम विवाह, अविवाहित जीवन, सुंदरता एवं कुरुपता, बलात्कार एवं शीलहरण, नर.नारी के आचरण संबंधी विरोधी मानदंड, पति की यौन दुर्बलता आदि उत्तर शती के नारी समस्याओं के प्रमुख पहलू हैं। विवाह. विच्छेद की समस्या नारी जीवन की एक ज्वलंत समस्या बन गई है। नारी के उभरते नये व्यक्तित्व से सामंजस्य स्थापित न करने के कारण उठनेवाली इस समस्या से बच्चो के मनोविज्ञान पर बडा असर पडता दिखाई दे रहा है। दहेज प्रथा, प्रेम विवाह, अवैध संतान, नैतिक सुरक्षा आदि समस्याओं के कारण उत्तर शती की स्त्री अकेलापण और कुंठाओं का शिकार होते दिखाई दे रही हैं। आजकल सरकार की और से ग्रामीण नारी के विकास के लिए बचत गट तथा आँगणवाडी के माध्यम से अनेक योजनाएं क्रियान्वित की जा रही हैं।

जाति प्रथा

जाति शब्द की उत्पत्ति ज्ञाति से मानी जाती है। कई शताब्दियों से हिंदू समाज में जाति

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

सामाजिक संबंधों की एक केन्द्रीय व्यवस्था रही है। जाति की उत्पत्ति, प्रकृति और भूमिका के बारे में बहुत से काल्पनिक अनुमान, विवाद और व्याख्याएँ दी गई हैं। जाति को एक सर्व घरदार व्यवस्था कहा गया है। यह एक ऐसी विचारधारा है जो सभी सम्बन्धों को निर्धारित करती रही है।

ग्रामीण समाज में जाति प्रथा अत्यधिक महत्वपूर्ण है। विभिन्न जातियों की अपनी-अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं जो उन्हें अन्य जातियों से पृथक करती हैं। ग्रामीण जीवन के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलू पर जाति प्रथा का गहरा प्रभाव रहता है। जाति एक बंद वर्ग है जो जन्म पर आधारित है और अपरिवर्तित है। केवल हिंदू ही नहीं अहिंदू ग्रामीण भी जाति प्रथा से प्रभावित हैं।1 उत्तर शती के अंतिम दशकों में भी उनकी बस्तियाँ गाँव के बाहर ही हैं। स्पृश्य-अस्पृश्यता, जाँति. पाँतिगत भेदभाव धीरे-धीरे कम हो रहा है परन्तु आज भी कम अधिक मात्रा में यह समस्या प्रत्येक गाँव में दिखाई देती है।

बदलता राजनीतिक परिवेश

उत्तर शती की राजनीति में जातिवाद का अधिक प्रभाव दिखायी पड़ता हैं। समकालीन कुछ राजनीतिक पार्टियाँ जातिवाद के सहारे सत्ता में आयीं है। इसका प्रभाव ग्रामीण जनता पर अधिक पडा। उत्तर शती के ग्रामीण हिंदी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में राजनीति में प्रवेशित जातिवाद का चित्रण किया हैं। जिसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित उद्धरण में देखे जा सकते हैं:

उत्तर शती का एक प्रमुख ग्रामीण उपन्यास सोनबरसा (लेखक-ज्योतिष जोशी) में जातिवादी राजनीति को इस प्रकार दर्शाया गया है, "कृष्णकांत मिश्र जान गए थें कि वर्षों से पिछडे हुए बिहार में अब शायद उम्मीद की कोई आस भी शेष नहीं रह गई है, क्योंकि राजनीति जातिवाद के घिनौने दौर में दाखिल हो गई है। उन्हें हैरानी हो रही थी कि कैसे पूरे बिहार में जातिवाद का घिनौना खेल खेलकर जन अभ्युदय दल ने राज्य की सत्ता हथिया ली थी। प्रजा पार्टी ने दशकों तक सत्ता में रहने के बाद भी बिहार में बुनियादी विकास का काम नहीं किया था। न सड़कें, न बिजली, न उद्योग, न भूमि सँधार, न ज़मीन की चकबंदी, न सिंचाई का साधन. कुछ भी तो नहीं हुआ बिहार में।2

उत्तर शती की राजनीति में जातिवाद कैसे प्रवेश कर चुका है इसे हम ज्योतिष जोशी के ग्रामीण उपन्यास सोनबरसा में देख सकते हैं. बालेश्वर चौधरी जिन्दाबाद के नारों से आकाश गूँज उठा था। लगभग दो हफ्ते बाद वे गाँव लौटे थे। अब वे बिहार के कैबिनेट मंत्री थे। नरेश यादव के मुख्यमंत्री बनने के बाद बिहार में यादववाद की मुहिम चल पड़ी थी। नरेश यादव ने बालेश्वर चौधरी को मुहंमाँगा मंत्री पद दिया था और कहा था कि वे सबसे पहले अपने समुदाय के लोगों का भला करें।

शिक्षा व्यवस्था में आया बदलाव

कोई भी मनुष्य आज के वैज्ञानिक युग में शिक्षा के महत्व को अस्वीकार नहीं कर सकता। शिक्षा ही एकमात्र साधन है जिसके द्वारा कई व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र अपनी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उन्नति कर सकता है। ज्ञान विज्ञान का आदि स्रोत शिक्षा ही तो है जिस पर राष्ट्रीय विकास निर्भर करता हैं। सच्चा भारत गाँव में बसता है अतः भारतीय जीवन के विकास के लिए ग्रामीण शिक्षा अत्यंत अनिवार्य है। ग्रामीण शिक्षा वहाँ के जीवन की एक

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकता है अन्यथा जीवन के विविध क्षेत्र अज्ञान एवं कूपमंडूकता में फँसे गतिहीन ही रह जायेंगे और राष्ट्रीय विकासधारा अवरुद्ध हो कर रह जाएगी।2

उत्तर शती के ग्रामीणों में पहले की अपेक्षा शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा है। वे शिक्षा के महत्व को समझने लगे हैं। ग्रामीण अपने बच्चों को अंगरेजी माध्यम में पढ़ाना चाहते हैं। आज वे अपने बच्चों को शहर भेजकर पढ़ाते हैं। ग्रामीण स्कूलों में योग्य, प्रशिक्षित, अनुभवी एवं कर्मठ अध्यापाकों का अभाव है। गावों के स्कूलों में अध्यापकों की नियुक्ति अधिकतर आस-पास के गावों से ही होती है, इसलिए वे घर का कामकाज निपटाकर विद्यालय आते हैं अतः समय का पालन करने में असमर्थ हैं। वर्तमान ग्रामीण अध्यापकों में मूल्यों का पतन होने लगा है जिसका चित्रण उत्तर शती के अनेक उपन्यासों में किया गया है। देश का भावी नागरिक है। विद्यालय उसके व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोग देनेवाली प्रमुख संस्था है।

ग्रामीण स्त्री की शिक्षा में आया बदलाव

भारतीय ग्रामीण नारी विविध परंपराओं धार्मिक अंधविश्वास एवं सामाजिक कुरीतियों की शिकार रही है। उसकी सामाजिक स्थिति मुस्लिम काल से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक काफी दयनीय थी। स्वतन्त्रता के पश्चात उसे भी पुरुष की भाँति समस्त मानवीय अधिकार मिले और वह घर की चारदिवारी से बाहर निकलने लगी।3 समाज में स्त्री शिक्षा को लेकर परिवर्तन आया और सामाजिक अवस्था के प्रतिमान बदले। नारी शिक्षा नारी जगत के मानसिक विकास का आवश्यक पहलू है।

उत्तर शती के अंतिम दशक के ग्रामीण उपन्यासों में दलित नारी की समस्याओं क¨ बडी मात्रा में दर्शाया गया हैं। इसे हम ज्योतिष जोशी के उपन्यास सोनबरसा में देख सकते है। ज्योतिष जोशी ने सोनबरसा में पटना में पढ़नेवाली दलित लड़की रूपाली का वर्णन किया हैं .जब गाँव के बारे में सोचती तो उसे अपना हरिजन होना अखर जाता। छूआछूत, घृणा, अपमान और गरीबी की मार झेलता हरिजन समुदाय कितना विवश और कातर है। वह घर जाकर कितनी छोटी हो जाती है। लोग तरह-तरह की बाते करते हैं। लोग उसकी पढ़ाई पर व्यंग्य करते हैं। कहते है, कुछ भी कर लो, मजदूर ही रहोगी, कोई अच्छा आदमी अपने पास फटकने न देगा। न जाने उसे किन पुण्यों के फल से जगेपर राम जैसे पिता मिले जिन्ह¨ने मजदूरी करके भी उसे यहाँ पढने को भेजा ताकि उस पर इस हिकारत की छाया भी न पडे।"

नारी की शैक्षिक समस्याओं में आया बदलाव.

आज हमारा समाज एक संधिकाल से गुजर रहा है। एक तरफ शिक्षित संवेदनशील नारी घर के अंदर माता एवं पत्नी बनकर संतुष्ट नहीं हो पा रही हैं ,तो दूसरी तरफ वे इतनी महत्वाकांक्षी भी नहीं कि अपने कैरियर के लिए घर, पति, बच्चे छोड़ दें ; और ऐसा भी नहीं कि इनकी सेवा में लुप्त रहकर परम सुख का आनंद उठाएँ। आज मध्यवर्ग में स्त्री शिक्षा स्वाभाविक और अनिवार्य बन गई है। विवाह के बाद धीरे-धीरे उसका सब कुछ छूटता चला गया। अब वह अक्सर सोचती है कि उसके इस जीवन में उन सारी चीजों का कोई महत्व नहीं है, तो क्या रात-रात भर जग कर पढ़ना, नाटक के संवाद याद करना, सब बेकार था, निरर्थक था उसके सामने यह प्रश्न उपस्थित

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

होता है कि क्या घर के भीतर रहकर उसने ठीक किया है ? ऐसे में अक्सर औरतों के बारे में कहा जाता है कि स्त्री अपने स्वभावगत गुणों को छोडकर खुले मैदान में पुरुष से प्रतिद्वन्द्वी बनकर उतर आई है। औरतें पुरुषों से प्रतियोगिता का भाव छोड दे। पुरुष की तुलना में स्त्रियों की स्थिति का निम्न होने के मुख्य कारण स्त्रियों का अशिक्षित होना तथा उनके द्वारा शिक्षा की उपेक्षा करना ही मूल कारण रहा है

बदलता ग्रामीण धार्मिक परिवेश

धर्म का अर्थ है धारण करना। इसकी व्युत्पत्ति धृ धातु से मानी जाती है। जब कोई मत या दार्शनिक अवधारणा सर्वमान्य होकर सामाजिक जीवन में व्यावहारिक बन जाता है, आचरण में उतर जाता है तब उसे धर्म के नाम से जाना जाता है। धर्म की अवधारणा, अलौकिक शक्तियों के प्रति आस्था से संबंधित रही है। धर्म कुछ निश्चित प्रकार के तथ्यों तथा विश्वासों, व्यवहारों, भावनाओं, संवेगों दृष्टिकोण आदि से संबंधित है।4 पश्चिमीकरण की आँधी ने गावों में भी कोई कमी नहीं रखी है। गाँव के मठ. मंदिरों में बैठे महंत पुजारी शहरी आधुनिकता में किसी प्रकार कम नहीं हैं। आधुनिकता की विडंबना यह है कि इसने हमे दोहरा व्यक्तित्व दे दिया है। घर पर हम घोर धार्मिक, परंपरावादी, नैतिकवादी एवं रुढ बन गए है। पर घर से बाहर हम प्रगतिशील होने, नारी की स्वतंत्रता का पक्षपाती होने और अछूत¨ के साथ समानता स्थापित करने की हवाई बातें करते है।5 धर्म एक शक्ति भी है और विश्वास भी। इसकी धारणा अमूर्त तथा अतिप्राचीन है। हमारा अतीत काल धार्मिक दृष्टि से गौरवमयी रहा है और उसके नियम शाश्वत नियमों की भाँति समाज में मान्य रहे हैं। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यूपर्यन्त जीवन के विविध सोपानों में धार्मिक मान्यताओं को एक आवश्यकता के रुप में मानता आया है। धर्म वह अनुशासन है, जो अंतरात्मा को स्पर्श करता है और हमें बुराई तथा कुत्सित से संघर्ष करने में सहायता देता है, काम, क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है, नैतिक बल को उन्मुक्त करता है, संसार को बचाने का महान कार्य साहस प्रदान करता है।6

उत्तर शती के ग्राम्य जीवन के अन्तर्गत युगानुरुप परिवर्तन हुए हैं। शहरों की प्रतिक्रियाएँ गावों में भी निरंतर हो रही है तथा उनके जीवनमानों उनकी आस्थाओं एवं मान्यताओं को परिवर्तित कर रही हैं। धार्मिक आस्तिकता का ज्यों का त्यों बचे रहना संभव नहीं है।

साम्प्रदायिकता की भावना का विष बीज भारतीय समाज में अंग्रेजों ने बोया। देश को स्वतंत्रता के साथ ही इस विष बीज के फल को भी चखना पडा। जिसके कारण अनेक परिवार नष्ट हुए। क्या गाँव, क्या शहर चारों और हिंदू और मुसलमान का प्रश्न उठ खडा हुआ और लोगों ने बड़ी अमानवीय एवं नृशंस हत्याएँ तक की।7

देवी . देवताओं पीर .पैरांबर¨ की पूजा:.

देवी.देवताओं, पीर. पैगम्बरों की पूजा ग्रामीण लोग अधिकांशत: करते हैं। गावों में बहुत सारे देवता होते हैं, कोई जेद्दबाबा तो कोई शीतला मइया, कोई जादूवीर, तो कोई पहलवान वीर तो कोई महेशावीर होते हैं जिनकी पूजा की जाती है तथा ये देवता गाँव की सुरक्षा से लेकर उनके सुख.दुख, शादी. विवाह इत्यादि में भाग लेते हैं। यही स्थानीय देवता इनके लिए ईश्वर के प्रतीक रुप में हैं। गावों में अभी अज्ञान और अशिक्षा इतनी है कि उन्हें पूर्ण रुप से ईश्वर की अमूर्त धारणा को समझाया नहीं जा सकता। अतः इनके बीच यही देवी-देवता आस्था के केन्द्र हैं, समय-कुसमय इन्हीं की शरण मे वे पहुँचते हैं और विशिष्ट

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अवसरों पर उनकी पूजा करते हैं। आज के वैज्ञानिक दौर में जबकि ईश्वर का लोप होता जा रहा है तब गाँव¨ में इन्हीं देवी-देवताओं के रुप में धार्मिकता शेष है।

बदलता ग्रामीण राजनीतिक परिवेश

वर्तमान युग में राजनीति समाज का महत्वपूर्ण अंग बन गई हैं। समाज के निर्माण में व्यक्ति के उत्थान. पतन में राजनीति का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

15 अगस्त 1947 ई. को भारत स्वतंत्र हुआ। तब से लेकर 1977 के चुनाव तक देश में कांग्रेस का शासन रहा। पं. जवाहरलाल नेहरु लाल बहादुर शास्त्री तथा इंदिरा गाँधी प्रधानमंत्री बने। 1974-75 में राजनीतिक अव्यवस्था अपने चरम पर पहुँच चुकी थी। सरकार के खिलाफ आंदोलन हो रहे थे, हडताल, घेराव, जुलूस, बन्द, तोडफोड, हिंसा दैनिक जीवन के अनिवार्य अंग बन गए। सन 1977 के चुनाव¨ में कांग्रेस की अभूतपूर्व पराजय और उत्तर भारत में उसके सफाए से अनुमान किया जा सकता है कि जनता मे आक्रोश व विरोध की चेतना कितनी तीखी और उद्दाम थी। उस समय भारतीय राजनीति में ध्रुवीकरण के चिन्ह दिखाई दिए 8 भारतीय राजनीति में पहली बार गैर कांग्रेसी सरकार बनी। जनता पार्टी के श्री मोरारजी देसाई भारत के प्रधानमंत्री नियुक्त हुए। यह जयप्रकाश नारायण के आंदोलन की देन थी किन्तु यह पार्टी ठीक से चल नहीं पाई और शीघ्र ही टूट गई। जनता ने देखा कि जनता पार्टी के नेता सिर्फ सत्ता के भूखे है तो इस चुनाव में जनता ने इन्दिरा गाँधी को फिर से कुर्सी पर बैठा दिया। किंतु 31 अक्टूबर 1984 को श्रीमती इंन्दिरा गाँधी के दो सुरक्षा कर्मचारियों ने ही उनकी गोली मारकर हत्या कर दी। उनकी हत्या के पश्चात श्री.राजीव गांधी को भारत का प्रधानमंत्री निर्वाचित किया गया। सन 1989 में हुए आम चुनावों में कांग्रेस को सत्ता से फिर हाथ धोना पडा एवं मिली जुली सरकार राष्ट्रीय मोर्चा का गठन हुआ जिसमें भ्रष्टाचार एवं बोफोर्स मुद्दा उठाने वाले जनता के नायक विश्वनाथ प्रताप सिंह प्रधानमंत्री बने तो किसान नेता एवं आंदोलन के प्रणेता चौधरी देवीलाल उप.प्रधानमंत्री बने। लेकिन 1990 में मंडल आयोग लागू करने के कारण उनकी सरकार गिर गई। बाहर से सरकार को समर्थन दे रही भारतीय जनता पार्टी ने राममंदिर. बाबरी मस्जिद विवाद के कारण सरकार से समर्थन वापस ले लिया।

1992 के 6 दिसम्बर को अयोध्या का विवादित ढाँचा गिराए जाने पर भी पूरे देश में दंगों की आग फैल गई। बहुत अधिक मात्रा में जन-धन की हानि हुई। आठ से अधिक पार्टियों की गठबंधन से केंद्र की सरकार चलती रही जिसमें सभी पार्टियाँ अपने स्वार्थ के लिए सरकार पर दबाव डालती रही। अंतिम दशक की राजनीति में स्वदेशी, हिंन्दुत्व, आरक्षण, राम मंदिर, स्थायित्व एवं कश्मीर आदि मुद्दों को नेताओं ने अपने प्रचार का अस्त्र बनाया।

आंतकवाद

यह उत्तर शती के बदलते भारतीय परिवेश का अविभाज्य अंग ही बन गया है। जब कोई व्यक्ति या समूह हिंसा करके अपने स्वार्थ सिध्द करता है तो वह आतंकवाद कहलाता है। व्यक्ति द्वारा फैलाया गया आतंक एक सीमा तक ही फैलता है, इसलिए उसे गुंडागर्दी की संज्ञा दी जाती है परंतु जब पूरा का पूरा समूह क्षेत्र या देश आतंक के रास्तें को अपना ले तो वह क्षेत्र आंतकवाद से ग्रस्त कहलाता है।9 अंतिम दशक के आसपास देश. विदेश की राजनीति में आंतकवाद को बढ़ावा मिला। बाबरी मस्जिद

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

कश्मीर समस्या को सामने रखकर विदेशी आंतकवादियों ने यह रूप धारण किया। जनता और नेताओं को उन्होंने भयभीत किया। आतंकवादियों ने कभी हजरतबल दरगाह को आश्रय बनाया तो कभी अक्षरधाम मंदिर को 1990 में तत्कालीन गृहमंत्री मुफ्ती मुहम्मद सईद की पुत्री रुबिया का अपहरण किया गया। पंजाब में तो आतंकवाद के कारण बहुत सालों तक राष्ट्रपति शासन चलता रहा। भ्रष्ट राजनीति और पाकिस्तान की साजिश के कारण फैला आतंकवाद हजारों निरपराधों की जान लेकर रहा। आतंकवाद का दूसरा ज्वलंत प्रांत कश्मीर रहा। यहाँ पर सीधा पाकिस्तान का हस्तक्षेप है। वहाँ के अल्पसंख्यक हिंदुओं के साथ दिल दहलाने वाले भयंकर अत्याचार किए गए, ताकि वे कश्मीर छोड़कर अन्यत्र जाकर बसें। कश्मीर के आतंकवाद ने आज कैसा का रुप धारण इस हम अपनी खुली आँखों से देख सकते हैं। पाकिस्तानी आंतकवादी कभी मुबई में तो कभी कोलकाता में बम विस्फोट करते हैं। कभी गुजरात के अक्षरधाम में तो कभी कश्मीर की मस्जिद में खून-खराबा करते हैं तो कभी संसद भवन पर आंतकी हमला कर देते हैं। नक्सली श्रमिक, मजदूर के लिए भूस्वामी व्यवस्था शहरी पूँजीपति, उद्योगपतियो तथा बिचौलियों के विरुद्ध लड़ते हैं। ये लोग पुलिस प्रशासन, सरकारी योजनाओं इत्यादि को अपना निशाना बनाते हैं। दसवें दशक में यह आंदोलन बहुत तेजी से बढा तथा आज भी बढता ही जा रहा है। इसमें काफी संख्या में पुलिस सी.आर.पी. के जवान मारे गए हैं।

गाँधीवाद.

गाँधीवाद बहुमत के बजाय सर्वे भवन्तु सुखिनः पर आधारित है। यह दलगत के बजाय दलविहीन था जिसने बिना भेदभाव के सबके कल्याण की भावना निहित थी। गाँधीवाद जीवन के भौतिक-नैतिक और आध्यात्मिक पक्षों को लेकर चलता है। यह छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों का समर्थन करता हैं। गाँधीवादी विचारको का मत है कि मशीनों का अनावश्यक सहारा लेने से मानव अकर्मण्य बन जाता है। तथा उसमें आत्मनिर्भरता जैसी भावनाएँ लुप्त हो जाती है। गाँधीवादी अन्याय और शोषण की समाप्ति शांतिपूर्ण अहिंसात्मक उपायों द्वारा ही करना चाहता है। उत्तर शती की राजनीति में गांधीवाद का प्रभाव विशेष रुप से घटने लगा। नेताओं में गाँधीवादी तत्व के विरोधी लक्षण उभरने लगे हैं। आज के नेता अहिंसा से नही हिंसा से काम लेते हैं और हिंसा करवाते हैं। आज के नेता राजनीति में धार्मिक भेदभाव फैलाने का प्रयत्न करते है तथा जाति.पाँति के भेदभाव की राजनीति करते हैं। आम जनता की समस्या छोड़कर वे अपनी समस्या सुलझाने में मग्न है। गाँव में भी पुराने गाँधीवादी जैसे-जैसे खत्म हो रहे है नई पीढी गाँधीवाद को नही मानती हैं। और गाँव में भी गाँधीवादी तत्व क्षीण होते जा रहे हैं। राजनीति के कारण गाँव आज कलह के केन्द्र बन गए हैं।

गाँधीजी ने सत्य को जीवन की पूर्णता, अस्तित्व की समग्रता के रुप में स्वीकार किया है। गाँधीजी ने सत्य के साथ अहिंसा को स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में सत्य की उपलब्धि में अहिंसा महत्वपूर्ण साधन है। गाँधी दर्शन व्यक्ति तथा समाज के हित का वह दर्शन है जिसके प्रथम प्रय¨गकर्ता स्वयं गाँधीजी थे। उन्होंने अपने एक भाषण में कहा था मेरा दर्शन जिसे हमने गाँधीवाद का नाम दिया है राज्य और अहिंसा में निहित हैं।10 वह किसी भी हिंसात्मक साधन का सहारा लेकर पूँजीपतियों का अंत नहीं करना

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

चाहते थे वरन उनका हृदय परिवर्तन कर उनकी सात्विक प्रवृत्तियों को जागृत करना चाहते थें।

सांस्कृतिक परिवेश

भारतीय संस्कृति का मूल एवं उसका सच्चा स्वरुप हमे ग्राम्य जीवन में ही प्राप्त होता है। ग्रामीण जीवन की बुनियादी गहराइयों के आधार को समझे बिना इस विशाल भारत के बहुविध रुप और उसकी आंतरिक एकता को नहीं समझा जा सकता। हमारी संस्कृति का मूलस्रोत कृषि है। हमारा सारा सांस्कृतिक प्रसार कृषी और ग्राम्य जीवन में ही परिव्याप्त है। भारतीय कृषक का समस्त जीवन ग्रामीण संस्कृति से अनुप्राणित है। ग्रामीण कलाएँ, त्योहार, संस्कार, रुढियाँ, प्रथाएँ, रीति-रिवाज, खेलकूद और विभिन्न अवयवों के योग से संस्कृति बनती है। ये अवयव ग्राम्यजीवन में व्यवस्था एवं अनुशासन के आवश्यक तत्व हैं, तथा ग्रामीणों में घुले-मिले हैं। कृषक संस्कृति की भौतिक वस्तुएँ कला और उपयोग दोनों ही दृष्टि से उपयोगी हैं। जैसे बॉस मूँज की टोकरी बनाना, साडियाँ काढना, अगरबत्ती बनना, आदि ग्रामीण कलाएँ हैं। आज ग्रामीण भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन की गति तेज हुई है। परंपरागत भारतीय दृष्टि को नवीन वैचारिक जगत का परिवेश प्राप्त हुआ, स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात देश में शैक्षणिक चेतना का प्रसार हुआ, लोगों के वैचारिक एवं व्यावहारिक जीवन में सांस्थानिक परिवर्तन आए।11

बदलते पर्व और त्यौहार

अंतिम दशक की जनता में पर्व त्योहारों के प्रति धीरे.धीरे अनास्था दिखाई पडने लगी है। पहले पर्व त्योहारों के अवसर पर पूजा.पाठ, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, कीर्तन आदि का पाठ होता था। पर्व त्योहारों के अवसर पर नट विधा और अभिनय के माध्यम से कथा को अभिव्यक्त करते थे, रामलीला, कृष्णलीला रासलीला गाँव-गाँव में होती थी, होली के अवसर पर प्रत्येक गाँव में लोकगीत, विरहा का आयोजन होता था, सभी ग्रामवासी वहाँ पर जाकर आपस में मिलते थे। पर गाँव में आज पार्टीवादिता के कारण पर्व त्योहारों के अवसर पर भी लोग दिल से गले नहीं मिलते। उनमें अजनबीपन, अकेलापन दृष्टिगोचर होता है। आज ग्रामीण छात्रों में पर्व.त्योहारों के प्रति आस्था नहीं है। नमामी ग्राम उपन्यास में डॉ.विवेकीराय ने इसका इसका विस्तार से चित्रण किया है। देवी-देवताओं, पीर.पैगम्बरों की पूजा ग्रामीण लोग अधिकांश करते हैं। ये स्थानीय देवी.देवता इनके लिए ईश्वर के बराबर होते हैं। उनकी आस्था का केन्द्र बिंदू यही देवी देवता हैं। वे इन्हीं के शरण में पहुँचते हैं और विशिष्ट अवसरों पर उनकी पूजा करते हैं।

लोकगीत.

ग्रामीण जनता की भावना उनके संवेगों, अनुभूतियों एवं उनकी सौंदर्य भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं। देश के प्रत्येक भाग में प्रचलित इन गीतों की भाषा तो क्षेत्रीय होती है परन्तु भावनाएँ एक ही होती है। विभिन्न प्रकार के अवसरों पर विभिन्न प्रकार के लोकगीत गाए जाते हैं। जैसे बच्चों के जन्म पर सोहर, सावन में कजरी, फाल्गुन माह में फगुआ, बिरहा, आल्हा (वीर रस के गीत), विवाह गीत इत्यादि शादी के अवसर पर भी द्वार पूजा के समय फेरे लगाते समय, सिंदूर डालते समय, खाना.खाते समय के भी गीत अलग.अलग होते हैं। लोकगीत लोकमानव के व्यक्तिगत और सामूहिक सुख.दुख की लयात्मक अभिव्यक्ति होते हैं। लोककथा की भाँति ये भी लोककंठ की मौखिक परंपरा की धरोहर और लोकमानस की विविध चिंताधाराओं के कोण माने गए हैं ।13 लोकगीतों में लोक का

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

समस्त जीवन चित्रित है। शिशु के प्रथम नामकरण विधि से लेकर जीवन की अंतिम कडी तक के भाव चित्र इनमे हैं। भाई से मिलने को व्याकुल बहन की व्यथा.कथा, स्त्रियों का आभूषण प्रेम, सास, ननद तथा सौत के अत्याचार से पीडित स्त्री की मनोव्यथा, कृषक परिवार की विपन्नता, वीरों की शौर्यगाथा, तथा मिलन.विरह के रंगारंग भाव इन गीतों में मिलते हैं। दूसरे शब्दों में इन लोकगीतों में जीवन का शाश्वत सत्य झलकता है, मौखिक परंपरा से विकसित होते हुए इन लोकगीतों को वेद¨ के समान माना गया है। लोकगीतों की शैली सहज होती है और उनमें गेय तत्व की प्रधानता रहती है।

अंधविश्वास एवं रूढियाँ

भारतीय ग्रामीण समाज आज भी भूत-प्रेत और अंधविश्वास में आस्था रखता है। इसका मुख्य कारण अज्ञान और अशिक्षा है जिसका चित्रण उत्तर शती के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में किया है। नज़र न लग जाए इसके लिए गाय के गले में काला डोरा बाँधना, डाइन के डर से बच्चों को दूसरों के घर में न जाने देना, ओझा द्वारा झाडफूक करवाना आदि इसके उदाहरण हैं। अंधविश्वास जनता की बौद्धिक दुर्बलता है, जो उसकी सामाजिक उपयोगिता में बाधक होती है।

ग्रामीण विवाह.

प्रत्येक समाज में विवाह का अपना एक विशिष्ट सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व होता है। एक धार्मिक संस्कार के रुप में विवाह ग्रामीण जीवन में आज भी महत्व रखता है। समाज के विकास के साथ-साथ वैवाहिक नियमों में परिवर्तन होते रहे हैं किन्तु ग्रामीण समाज में आज भी वैवाहिक परंपराओं का कठोरता से पालन किया जाता है। आज ग्रामवासी शादी. ब्याह की पद्धतियों में शहरों का अनुकरण करने लगे हैं। पहले ग्रामीण शादी-विवाह में पालकी का प्रयोग करते थे आज सभी लोग गाड़ी-मोटरगाडी में जाने लगे हैं। शादी-विवाह में कतारबद्ध बैठकर भोजन करने की पध्दति नष्ट होने के कगार पर है, आज का ग्रामीण शादी विवाह में बुफे सिस्टम का प्रयोग करने लगा है।

आज के परिवर्तित परिवेश में विवाह के प्रति नारी का दृष्टिकोण बदला है, शहर में उसे काफी अधिकार प्राप्त हुए हैं। वह वरपक्ष द्वारा देखी जाती हैं तो वह भी समानता के आधार पर उस पुरुष को विवाह से पूर्व ही देखना चाहती है जिसके साथ उसे आजीवन रहना है। यह देखने और परखने की प्रथा ग्रामीण परिवेश में उत्तर शती में बहुत कम देखने को मिलती है। गाँव की नारी का भाग्य बहुत कुछ अभी उसके माता-पिता के हाथ में है। अंतर्जातीय विवाह शहर¨ में बढ रहे है वह गाँव में भी पनप रहे हैं लेकिन नगरीय परिवेश का तलाक और तनावपूर्ण मानसिकता अभी वहाँ दृष्टिगत नही होती। विवाह के विषय में गाँव की युवतियां लगभग शत-प्रतिशत माता-पिता के निर्णयों से ही बँधी होती हैं।14 यद्यपि उन्हें इन निर्णयों की कीमत कई बार अपने अमूल्य जीवन से चुकानी पड़ती है।

आज के ग्रामीण परिवेश में दहेज प्रथा का स्वरुप बहुत कुछ वहाँ के वैवाहिक संबंधों में विद्यमान है। यह प्रथा आज भी समाज में बुरी तरह व्याप्त है। यद्यपि सब इसे बुरा कहते हैं फिर भी सभी इसका पालन करते हैं। अंतिम दशक मे दहेज प्रथा बहुत तेजी से बढ़ रही है। बडी जातियों के साथ-साथ छोटी जातियों में भी यह प्रथा अपना विस्तार कर रही है। लोग दहेज लेना और दहेज देना दोनों प्रतिष्ठा का विषय समझने लगे। वस्तुत: दहेज प्रथा को आज की बढ़ती हुई भौतिकवादी दृष्टि ने आश्रय प्रदान किया है

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

किन्तु कितनी ही युवतियों को इसके परिणामस्वरुप अपना फूल-सा जीवन नष्ट करना पड़ रहा है।15

ग्रामीण आर्थिक परिवेश

किसी भी समाज के संगठन एवं उन्नति का आधार अर्थ व्यवस्था पर निर्भर करता है। भारत कृषि प्रधान देश है। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मूलाधार कृषि है। कृषि के चारों ओर ही सम्पूर्ण ग्रामीण आर्थिक एवं सामाजिक संरचना केन्द्रित है। ग्रामीण कृषि पिछडी हुई है। सभी ग्रामीण व्यवसाय कृषि से संबंधित है। ग्रामों में भूमि महत्वपूर्ण संपत्ति है। भूमि के प्रति ग्रामीणों का अपार मोह है क्योंकि वही उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार है। अंतिम दशक के पूर्व तक लड़के की शादी विवाह के अवसर पूछा जाता था कि कितनी कृषि योग्य भूमि है कितनी गाएँ, भैंसे तथा बैल हैं। आर्थिक असमानता अनेक ग्रामों में विद्यमान है। आज सभी ग्रामीणों के पास भूमि नहीं है ।

औद्योगीकरण

औद्योगीकरण उन्नति कि वह प्रक्रिया है जो सामान्य उपकरणों से चलनेवाले घरेलू उत्पादन से लेकर वृहद स्तरीय कारखानों में उत्पादन तक संपन्न होती है, परन्तु समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह शब्द उद्योगों के संरचनात्मक बदलाव के फलस्वरुप होनेवाले आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को व्यक्त करता है। औद्योगीकरण में उन तमाम सामाजिक कारकों की वृहद श्रृंखला समाहित है जो सामाजिक जीवन के चरित्र को गहराई से प्रभावित करते है। उदाहरण के तौर पर कारखानों के माध्यम से किया गया विस्तृत श्रम विभाजन तथा नई कार्य संस्कृति इत्यादि। आजादी के बाद से ही देश में बडे-बडे उद्योग स्थापित होने लगे थेऔर उत्तर शती तक आते-आते बडे-बडे नए नगर विकसित हो गए। गाँव से भाग-भाग कर कारखानों में लोग मजदूरी करने लगे हैं। लेकिन औद्योगीकरण और मशीनी विकास ने हमे बहुत-सी चीजे खोनी पडी है। पहले जो हमारे कुटीर उद्योग तथा हाथ की कारीगिरी की मिसाल रहा करती थी वह अब बडे-बडे उद्योग तथा मशीनों की होड में नष्ट-सी होने लगी है। आधुनिक कम्प्यूटर के प्रयोग से बेरोजगारी एवं बेकारी बढ़ गई है। पूँजी के असमान बँटवारे से धनी और गरीब के बीच की खाई चौड़ी होती जा रही हैं। प्रदूषण की समस्या बढ़ती जा रही हैं।

शिक्षित बेरोजगारी

लार्ड विलियम बैवरिज का कथन है, संसार में पाँच दानव, मानव जाति क" ग्रसित करने के लिए सदा तैयार रहते है निर्धनता, रोग, अज्ञानता, गंदगी तथा बेकारी पर ऐसा प्रतीत होता है कि इन पाँचों में से बेकारी सबसे बडा दानव है क्योंकि यही देश की आर्थिक प्रगति और विकास के मार्ग में सबसे बड़ा काँटा बनकर चुभता है। महात्मा गाँधी ने इसे समस्याओं की समस्या कहा था। बेकार व्यक्ति अशिक्षित ही नहीं बल्कि शिक्षित भी हैं। औद्योगीकरण तथा शिक्षा के प्रसार ने जहाँ एक ओर शासन व्यवस्था को दृढता प्रदान की है वहीं दूसरी ओर शिक्षित बेर"जगारी जैसी समस्या को भी जन्म दिया है। जनसंख्या वृध्दि के कारण यह समस्या और भी गम्भीर होती जा रही है। ग्रामीण शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी के कारण कुंठा निराशा, ग्लानि, आक्रोश एवं घृणा की भावना बढ़ने लगी है। आज आर्थिक समस्या के कारण शिक्षित बेरोजगार युवक नक्सलवादी एवं आतंकवादी संगठनों में जाने लगा है। मशीनीकरण के कारण भी बेरोजगारी बढ़ी है। पहले जहाँ किसी काम को 10 व्यक्ति करते थे वहाँ आज एक व्यक्ति

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

मशीन की सहायता से कर लेता है। आज तो इंजीनियर सॉफ्टवेयर इंजिनियर, डॉक्टर तथा शिक्षक बी.एड वाले तथा नेट / सेट पीएच. डी. के बाद भी बेकार हैं। अंतिम दशक में ग्रामिण शिक्षित बेरोजगार युवक सरकारी नौकरी न मिलने के कारण जो भी आजीविका मिलती है उसे ग्रहण कर असंतुष्ट जीवन बिताता हैं। अंतिम दशक के अनेक उपन्यासों में इसका चित्रण किया गया है।

वैश्वीकरण

संचार तथा परिवहन के विकास नई-नई वैज्ञानिक तकनीकों तथा सूचना प्रद्योगिकी के विकास से आज न केवल दूरियाँ कम हुई है, बल्कि संसार के विभिन्न राष्ट्र एक दूसरे के बहुत निकट आ रहे हैं। इस प्रकार विश्व के निकट आने की प्रक्रिया को ही वैश्वीकरण कहा जा रहा है। वैश्वीकरण ने संसार के लोगों को हर प्रकार की विभिन्नताओं के बावजूद जोडती है। आज के युग में संसार के लोग इंटरनेट के जरिए एक दूसरे से जुड़ रहे हैं। समाज बहुजन हिताय बहुजन सुखाय नहीं बल्कि सर्वजन हिताय, सर्व जन सुखाय हो गया।16 अनेक अंतरराष्ट्रीय संगठन भूमंडलीकरण का संचालन और निर्देशन कर रहे हैं। इन संगठन में जी 7 विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश शामिल हैं। न्यूयॉर्क टाईम्स के विदेशी मामलों के स्तम्भकार टॉमस एल. फ्रीडमेन के अनुसार भूमंडलीकरण का अभियान अमेरिका के नेतृत्व में चलना स्वाभाविक है क्योंकि भूमंडलीकरण ने अमेरिकी जीवन मूल्यों तथा आचार-विचारों को अपना लिया है यह अनायास नहीं है। अमेरिका ही पूर्ण रुपेण मुक्त बाजार और उच्च प्रौद्योगिकी का महंत रहा है।17 उपर्युक्त सारे बदलते परिवेश का प्रभाव का प्रतिबिंब हम उत्तर शती के हिंदी उपन्यासों में देख सकते है।

संन्दर्भ ग्रंथ

1 ग्रामीण समाजशास्त्र साहित्य परिप्रेक्ष्य में, डॉ. विश्वम्भर दयाल गुप्त, पृ. 15

2 भारतीय ग्रामीण समाज, प्रा. परिहार, पृ. 88

3 स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, डॉ. ज्ञानचंद्र गुप्त, पृ. 208

4 ग्रामीण समाजशास्त्र, साहित्य परिप्रेक्ष्य में, विश्वम्भर दयाल गुप्त, पृ. 109

5 स्वातंत्रोत्तर हिंदी उपन्यास और ग्रामचेतना डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त; पृ. 172

6 स्वातंत्रोत्तर हिंदी कथा साहित्य और ग्रामीण जीवन, विवेकीराय, पृ. 80

7 धर्म और समाज, डॉ.राधाकृष्णन, पृ. 45

8 समकालीन हिंदी उपन्यास: तथ्य विश्लेषण .डॉ. प्रेमकुमार, पृ. 138.139

9 जैनेन्द्र के कथासाहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ., डॉ. सुरेश गायकवाड, पृ. 62

10 Sociology Synopsis,John Cuber, Pp 188

11 गोल्डेन हिंदी (आधार) कक्षा 1 , सी. वी. एस. ई. सौम्यचन्द्र, पृ.101.102

12 स्वातंत्रोत्तर हिंदी उपन्यास और ग्रामचेतना,. डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त, पृ. 199

13 वही, पृ. 199

14 स्वातंत्रोत्तर हिंदी उपन्यास और ग्रामचेतना, ज्ञानचन्द्र गुप्त, पृ. 117

15 वही, पृ. 122

16 हंस (नवम्बर 2001), राजेन्द्र यादव, पृ. 38

17 न्यूयार्क टाईम्स मैगजीन 28 मार्च 1999